वर्ष : 3 समग्रांक : 11 अक्टूबर-दिसम्बर 2013 मूल्य : 25 रुपये

पारस-परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

सृजन-स्मरण

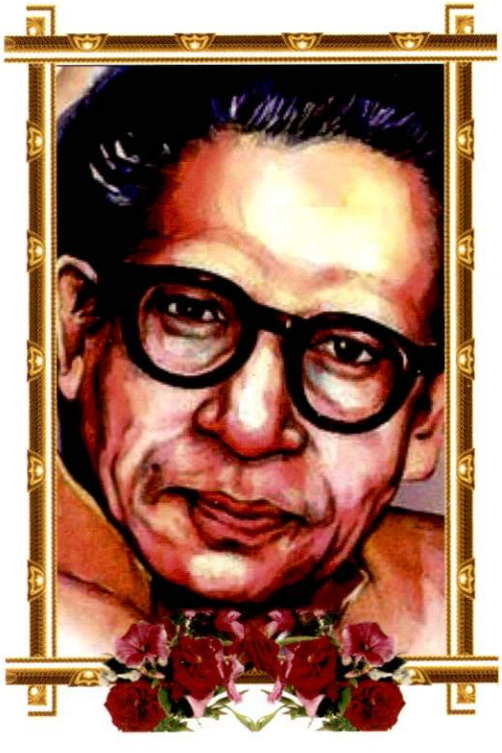

हरिवंश राय बच्चन

(जन्म : 27 नवम्बर, 1907; निधन : 18 जनवरी, 2003)

ज्ञात हुआ यम आने को है ले अपनी काली हाला
पंडित अपनी पोथी भूला, साधू भूल गया माला
और पुजारी भूला पूजा, ज्ञान सभी ज्ञानी भूला,
किन्तु न भूला मरकर के भी पीनेवाला मधुशाला

—हरिवंश राय बच्चन

वर्ष : 3, समग्रांक : 11, अक्टूबर–दिसम्बर, 2013 रजि. नं. यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस-परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं
की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

अनुक्रमणिका

संरक्षक मंडल
अभिमन्यु कुमार पाठक;
अरुण कुमार पाठक;
राजेश प्रकाश;
डॉ. अशोक मधुप
डॉ. सुनील जोगी

संपादक
शिवकुमार बिलग्रामी

संपादकीय कार्यालय
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभयखण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद – 201012
मो. : 09868850099

लेआउट एवं टाइपसेटिंगः
आइडियल ग्राफिक्स
मो. : 9910912530

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा
पारस–बेला न्यास के लिए
डा. एल. पी. पाण्डेय द्वारा प्रकाश पैकेजर्स,
257, गोलागंज, लखनऊ तथा आप्शन प्रिन्टोफास्ट,
पटपड़गंज इन्ड. एरिया, नई दिल्ली से मुद्रित
एवं ए–1/15 रश्मिखण्ड, शारदा नगर योजना,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश से प्रकाशित

पारस–परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है । पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

संपादकीय		2
पाठकों की पाती		3
श्रद्धा सुमन		
बाबू जी की याद	डा॰ अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
ग्राम–युवति	पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	5
मुझे पुकार लो	डा॰ हरिवंश राय बच्चन	6–7
मुक्तिकामी चेतना अभ्यर्थना इतिहास की	अदम गोंडवी	8–9
देश के नाम महंगाई का सन्देश	ओम प्रकाश आदित्य	10
दिवा–स्वप्न	डा॰ राम विलास शर्मा	11
गेहूँ की सोच	प्रभाकर माचवे	12
समय के सारथी		
अध्यात्म के दोहे	पं0 देवनारायण तिवारी	13
बंद हुआ है गौरैया का आना आँगन में	सर्वेश चन्दौसवी	14
अब सागर मंथन होगा...!	पं॰ सुरेश नीरव	15
गीतों की वेदना पर	राजवीर सिंह 'भारती'	16–17
गीत	कैलाश 'कुंतल'	18
यह शहर है	लल्लन प्रसाद	19
अनुत्तरित	पीयूष चन्द्र दत्त	20
बँटवारा कर दो ठाकुर	महेश अनघ	21
अपने ही साए	गुलाब सिंह	22
नारी–स्वर		
मखमली स्वेटर	डॉ॰ कीर्ति काले	23
महक उठें मन	गीता पंडित	24
खुशी सुनहरे कल की	शांति सुमन	25
परिपक्वता	प्रीति सुराना	26–27
प्रतीक्षा	रचना आभा	28
यही प्यार है	सुरभि सक्सेना	29
ऐ देश के रखवाले	आँचल मलिक	30
नये रचनाकार		
उगते सूरज का स्वागत करो राष्ट्रवर	कौशलेन्द्र सिंह 'राष्ट्रवर'	31
जीवन की रफ़्तार	राजेश रंजन कुमार	32
दर्द ही जब दवा बन गई	विनोद पाण्डेय	33
तब सावन बरसे तो	राकेश खत्री	34
मर्यादा– एक मृगतृष्णा	विजेन्द्र कुमार 'अभी'	35
सरदी का अहसास	कामदेव शर्मा	36
माधव तुम चाहते तो...	सुशील भूषण	37
आँगन और देहरी	सुरेन्द्र शर्मा	38
पुस्तक–समीक्षा		
युवा मन की अनुभूतियों को उकेरती कविताएं	हरिमोहन	39
अंत में		
मुझे भर नैन रोने दो	शिवकुमार बिलग्रामी	40

संपादकीय

ग़ालिब का एक शेर कुछ यूँ है कि–

दे के खत, मुँह देखता है नामाबर
कुछ तो पेग़ाम–ए–ज़बानी और है

(अर्थात प्रेमिका का पत्र–वाहक मुझे पत्र सौंपकर मेरा मुँह देख रहा है। इसका अर्थ यह है कि पत्र के अतिरिक्त उसने कोई मौखिक संदेश भी भिजवाया है)

मित्रों, पारस–परस में प्रकाशित होने वाली हर कविता में एक संदेश होता है। लेकिन इसके बावजूद ऐसा लगता है कि कुछ और बातें आप तक पहुंचानी शेष हैं। कविताओं में 'पैग़ाम' लिख दिये गये हैं लेकिन 'पेगाम–ए–जबानी' और है जो आप तक संपादकीय के माध्यम से पहुंचाने का प्रयास किया जा रहा है।

इस पत्रिका के पाठकों में से अधिकतर पाठक स्वयं कवि भी हैं। स्वच्छन्दता कवियों का स्वाभाविक गुण है। लेकिन कविता का भी अपना एक धर्म है। धर्म अर्थात जिसको धारण करना अनिवार्य है। कविता का धर्म है उसकी वह शब्द–संरचना जो सीधे हमारे हृदय में उतरती है और हमारे मन में ऐसा आकर्षण उत्पन्न करती है कि मन नृत्य करने लगे। यदि पाठक कविताओं को पढकर भाव–विभोर नहीं हो पाता, उसके मन में नृत्य–सादृश कोई कंपन–वेग पैदा नहीं होता, तो इसका अर्थ है कवि अपने काव्य–धर्म का निर्वहन ठीक से नहीं कर पाया है।

आज के दौर में कविता में ज्ञेयता के पहलू को नकार भी दें, तो भी कविता में लयबद्धता के साथ–साथ इसकी संदेश–क्षमता की अनदेखी नहीं की जा सकती। कविता का अर्थ भावों को अभिव्यक्ति देना है, भावों की 'उलटी' करना नहीं हैं। आजकल सोशल मीडिया के माध्यम से 'स्वप्रकाशन' की सुविधा उपलब्ध है। इसलिए अधिकतर कवि–रचनाकार अपने अपरिपक्व–काव्य को, उसके निहितार्थ की अनदेखी कर, उसे प्रकाशित कर देते हैं और अपने सुहृद पाठकों के बीच चर्चा में भी आ जाते हैं, लेकिन वो आम पाठक और विशिष्ट पाठक का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाते। ऐसे कवि कालजयी कवियों की श्रेणी में भी नहीं आते।

काव्य कर्म वस्तुतः श्रमसाध्य और मनसाध्य कर्म है। श्रमसाध्य इसलिए कि भाव की अभिव्यक्ति के लिए हमें अनिवार्य शब्द अनुशासन अपनाना पड़ता है। काव्य के कला पक्ष की बारीकियों को समझना पड़ता है। मन साध्य इसलिए कि यदि रचनाकार के मन में एकाग्रता नहीं होगी तो उसकी भाव श्रृँखला बिखर जायेगी और वह अपनी भावाभिव्यक्ति को उस चरण तक नहीं पहुँचा पायेगा जहां से वह काव्य धारा के रूप में प्रवाहित हो सके।

पारस–परस के इस अंक में हमने अधिकतर ऐसे सिद्धहस्त कवियों की रचनाओं को शामिल किया है जो काव्य के मर्म और धर्म को अच्छी तरह समझते हैं। इसी कड़ी में एक निर्णय यह भी लिया गया है कि पारस–परस के आगामी अंको में किसी ऐसे ही एक सिद्धहस्त कवि/रचनाकार का साक्षात्कार प्रकाशित किया जायेगा जो काव्य की कसौटी पर खरा उतरता हो और जिसने अपने काव्य के माध्यम से हमें एक नई दिशा दी हो। आशा है कि आप हमारे इस प्रयास को सराहेगें।

पारस–परस के इस अंक में जिन कवियों / रचनाकारों की रचनाओं को प्रकाशित किया गया है हम उनके प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं।

शिवकुमार बिलग्रामी
संपादक

माननीय संपादक महोदय,

मै विगत दो वर्षों से पारस–परस पत्रिका का पाठक हूँ। इसमें संदेह नहीं कि पारस–परस में अच्छी और विरल कविताए' पढने को मिलती हैं। लेकिन मेरा सुझाव है कि आप पत्रिका में विविध पाठ्य सामग्री प्रकाशित करें ताकि पत्रिका की ग्राह्यता और बढ़ सके। आप यदि इसे काव्य–केन्द्रित ही रखना चाहते हैं, तब भी मेरा सुझाव है कि आप इसमें काव्य के विविध छन्द जैसे कवित्त, सवैया, दोहा, गीत–प्रगीत, नवगीत सोरठा, हज़ल–गज़ल के साथ काव्य आधारित लेखों को भी स्थान दें ताकि पाठकों को काव्य के समग्र पहलुओं की जानकारी मिल सके। इसके अतिरिक्त आप इसमे उदीयमान कवियों और कुछ स्थापित कवियों का साक्षात्कार भी प्रकाशित करें ताकि यह पत्रिका और अधिक लोकप्रिय हो सके।

निशांत अरोड़ा
नोएडा, उत्तर प्रदेश

महोदय,

पारस–परस पत्रिका मुझे बेहद अच्छी लगती है। इस पत्रिका की सबसे अच्छी बात यह है कि इस पत्रिका का कोई कामर्शियल उद्देश्य नहीं है। इसे सेवा भाव से प्रकाशित किया जा रहा है। शायद इसीलिए इसमें छपने वाली रचनाओं का स्तर अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली रचनाओं से बेहतर है। आपकी पत्रिका में दिवंगत कवियों की जो दुर्लभ रचनाएं प्रकाशित होती हैं उन्हें पढ़कर मेरे हृदय में पत्रिका के प्रकाशकों के लिए आभार और आशीष के भाव उतर आते हैं क्योंकि आज के इस दौर में जब बाज़ार सब कहीं हावी है, वो निःस्वार्थ सेवा कर रहे हैं।

कुलदीप सिंह
जयपुर, राजस्थान

रचनाकार अपनी रचनाएं और प्रतिक्रियाएं कृपया निम्नलिखित पते पर भेजें–

संपादक : पारस–परस
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभय खण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

e-mail
paarasparas.lucknow@gmail.com
shivkumarbilgrami99@gmail.com

बाबू जी की याद

–डा॰ अनिल कुमार पाठक

काल चक्र ये चलता जाये,
कुछ बिछुड़े कुछ मिलता जाये।
कुछ टूटे, कुछ जुड़ता जाये,
कुछ गिरता, कुछ बनता जाये।
पर अपनी दुनिया में सब कुछ,
केवल–केवल मिटता जाये।
दुख के तूफां में उलझा
जीवन कैसे आबाद करें।
बाबू जी को याद करें,
हर पल उनको याद करें।।

तेरी गरिमा औ' मर्यादा,
जीवन कितना सीधा–सादा।
दृढ़ प्रतिज्ञ औ' अडिग इरादा,
मिला नेह हमको भी ज्यादा।
जबसे साथ तुम्हारा छूटा,
बनकर रह गये केवल प्यादा।
घोर निराशा, कोई न आशा,
किससे अब फरियाद करें।
बाबू जी को याद करें,
हर पल उनको याद करें।।

त्याग, समर्पण और प्रतिज्ञा,
तेरी वह प्रतिभामय प्रज्ञा।
स्थितप्रज्ञ तुम्हारी संज्ञा,
नहीं कर सकूँ कभी अवज्ञा।
तुम प्रेरक, आर्दश हमारे,
करता फिर से आज प्रतिज्ञा।
बाबूजी ! संदेश तुम्हारे,
चहुँदिशि गूँजें, नाद करें।
बाबूजी को याद करें,
हर पल उनको याद करें।।

❖❖❖

ग्राम–युवति

–पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

वह आती,
अपने बिखरे केशों से,
यौवन–राशि लुटाती,
पथ पर मुसकाती, वह आती।

कर खेल समीरन मन्द हास
बिखराता उसके केश–पास
मुख पर घूंघट–देता डाल
लज्जा से हो उठती लाल
फटे आँचल को खिसकाती, वह आती।

टेढ़े पथ पर टेढ़ी चाल,
लज्जित होता है देख व्याल,
मुख चूम लिया करता सौरभ,
सिहर उठती वह तत्काल,
तनिक लज्जा से मुड़ जाती, वह आती।

उस ओर क्षितिज के आगे,
कुछ महल बने वैभवशाली।
रहतीं उसमे कितनी ही बालायें,
पहने नीली, पीली साड़ी।
पर दोनो में अन्तर कितना,
नहीं चन्द्र–तारक में जितना,
यह जीवन को सुस्मित करती,
वे निज वैभव पर इठलातीं, वह आती।

❖❖❖

डा॰ हरिवंश राय बच्चन

हरिवंश राय बच्चन का जन्म 27 नवम्बर, 1907 को प्रतापगढ़ जिला के बाबूपट्टी गाँव में हुआ था। ये हालावादी काव्य के अग्रणी कवि हैं। इन्होंने विविध साहित्य की रचना की लेकिन इन्हें सर्वाधिक ख्याति 'मधुशाला' से मिली जिसे इन्होंने उमर खय्याम की रूबाइयों से प्रेरित होकर लिखा था। इन्हें साहित्य सेवा के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, सरस्वती सम्मान सहित पद्म भूषण जैसे सम्मानों से सम्मानित किया गया। इनका निधन 18 जनवरी 2003 को मुंबई में हुआ।

मुझे पुकार लो

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!

(1)

ज़मीन है न बोलती
न आसमान बोलता,
जहान देखकर मुझे
नहीं ज़बान खोलता,
नहीं जगह कहीं जहाँ
न अजनवी गिना गया,
कहाँ–कहाँ न फिर चुका
दिमाग–दिल टटोलता;
कहाँ मुनष्य है कि जो
उमीद छोड़कर जिया,
इसीलिए अड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो
,इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!

.....जारी

(2)

तिमिर–समुद्र कर सकी
न पार नेत्र की तरी,
विनष्ट स्वप्न से लदी,
विषाद याद से भरी,
न कूल भूमि का मिला,
न कोर भोर की मिली,
न कट सकी, न घट सकी
विरह–घिरी विभावरी;
कहाँ मनुष्य है जिसे
कमी खली न प्यार की,
इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे दुलार लो!
इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो!

(3)

उजाड़ से लगा चुका
उमीद मै बहार की,
निदाघ से उमीद की
बसन्त के बयार की,
मरुस्थली मरीचिका
सुधामयी मुझे लगी,
अँगार से लगा चुका
उमीद मैं तुषार की;
कहाँ मनुष्य है जिसे
न भूल शूल–सी गड़ी,
इसीलिए खड़ा रहा
कि भूल तुम सुधार लो!
इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो!
पुकार कर दुलार लो, दुलार कर सुधार लो!

❖❖❖

अदम गोंडवी

अदम गोंडवी का वास्तविक नाम रामनाथ सिंह था। इनका जन्म 22 अक्टूबर, 1947 को गोंडा जिला के आटा गाँव में हुआ था। अदम गोंडवी दुष्यंत कुमार की परंपरा के शायर/कवि हैं और उनकी शायरी में ऐसा धार लगा व्यंग है कि पाठक का कलेजा चीर कर रख देता है। इनकी प्रमुख कृतियां हैं– धरती की सतह पर और समय से मुठभेड़। इन्हें दुष्यन्त कुमार सम्मान से सम्मानित किया गया है। इनका निधन 18 दिसम्बर, 2011 को हुआ।

(1)

मुक्तिकामी चेतना अभ्यर्थना इतिहास की

मुक्तिकामी चेतना अभ्यर्थना इतिहास की
यह समझदारों की दुनिया है विरोधाभास की।

आप कहते हैं जिसे इस देश का स्वर्णिम अतीत
वो कहानी है महज प्रतिरोध की, संत्रास की।

यक्ष प्रश्नों में उलझ कर रह गयी बूढ़ी सदी
ये प्रतीक्षा की घड़ी है क्या हमारी प्यास की ?

इस व्यवस्था ने नई पीढ़ी को आखिर क्या दिया
सेक्स की रंगीनियाँ या गोलियाँ सल्फास की।

याद रखिए यूँ नहीं ढ़लते हैं कविता में विचार
होता है परिपाक धीमी आँच पर एहसास की।

(2)

जिस्म क्या है रूह तक सब कुछ खुलासा देखिए

जिस्म क्या है रूह तक सब कुछ खुलासा देखिए,
आप भी इस भीड़ में घुस कर तमाशा देखिए।

जो बदल सकती है इस पुलिया के मौसम का मिजाज,
उस युवा पीढ़ी के चेहरे की हताशा देखिए।

जल रहा है देश यह बहला रही है कौम को
किस तरह अश्लील है कविता की भाषा देखिए।

मत्स्यगंधा फिर कोई होगी किसी ऋषि का शिकार
दूर तक फैला हुआ गहरा कुहासा देखिए।

.....जारी

(3)

विकट बाढ़ की करुण कहानी

विकट बाढ़ की करुण कहानी नदियों का संन्यास लिखा है
बूढ़े बरगद के वल्कल पर सदियों का इतिहास लिखा है।

क्रूर नियति ने इसकी किस्मत से कैसा खिलवाड़ किया है
मन के पृष्ठों पर शाकुंतल अधरों पर संत्रास लिखा है।

छाया मदिर महकती रहती गोया तुलसी की चौपाई
लेकिन स्वप्निल स्मृतियों में सीता का वनवास लिखा है।

नागफनी जो उगा रहें हैं गमलों में गुलाब के बदले
शाखों पर उस शापित पीढ़ी का खंडित विश्वास लिखा है।

लू के गर्म झकोरों से जब पछुआ तन को झुलसा जाती
इनसे मेरे तनहाई के मरूथल में मधुमास लिखा है।

अर्धतृप्ति उद्याम वासना ये मानव जीवन का सच,
धरती के इस खंडकाव्य पर विरहदग्ध उच्छ्वास लिखा है।

❖❖❖

निवेदन

पारस–परस पूरी तरह से एक गैर–व्यावसायिक पत्रिका है। इसका एकमात्र उद्देश्य काव्य के माध्यम से हिन्दी कवियों के पैगाम को जन–जन तक पहुंचाना है। इस पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के साथ रचनाकारों का नाम और उनसे संबंधित उचित जानकारी दी जाती है जिससे रचनाकार को उचित श्रेय मिलता है। इतना ही नहीं, हम प्रत्येक अप्रकाशित/मौलिक रचना के प्रकाशन से पूर्व संबद्ध रचनाकार/कॉपीराइट धारक से लिखित/मौखिक अनुमति का भी भरसक प्रयास करते हैं । फिर भी यदि किसी रचनाकार, कॉपीराइट धारक को कोई आपत्ति है तो उनसे अनुरोध है कि वह हिन्दी काव्य के प्रचार–प्रसार को ध्यान में रखते हुए, इस पत्रिका के योगदानकर्त्ताओं से हुई भूलवश गलती को क्षमा कर दें। मौलिक/अप्रकाशित रचनाओं के कॉपीराइटधारक अपनी आपत्तियाँ paarasparas.lucknow@gmail.com पर मेल कर सकते हैं ताकि पत्रिका के आगामी अंकों में उनकी रचनाएं प्रकाशित करने से पूर्व लिखित अनुमति सुनिश्चित की जा सके और इस संबंध मे आवश्यक कानूनी पहलुओं को ध्यान में रखा जा सके।

इस कार्य को **पारस–बेला न्यास** द्वारा जन–जागरुकता और जनहित की दृष्टि से किया जा रहा है। **इस पत्रिका को प्राप्त करने के लिए संपादकीय कार्यालय से संपर्क कर सकते हैं।**

ओम प्रकाश आदित्य

ओमप्रकाश आदित्य का जन्म 5 नवम्बर, 1936 को हरियाणा के गुड़गाँव (रणसीका) में हुआ था। यह मूलतः मंच के कवि थे और अपनी अनूठी हास्य शैली में कविता के लिए विख्यात थे। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं– गोरी बैठी छत पर, इधर भी गधे हैं उधर भी गधे हैं, उल्लू का इंटरव्यू इत्यादि। इनका निधन 8 जून, 2009 को एक कार दुर्घटना में हुआ।

देश के नाम महंगाई का सन्देश

मैं महंगाई
महँगे देशभक्त लोगों के आमन्त्रण पर
भारत आई
तेज गति लाने प्रगति में
भारत आई
मुझे गलत समझो न गरीबों
बहुत ठीक हूँ
बहुमत देकर तुमने जिनको बहुत उठाया
मैं तो उनकी ही प्रतीक हूँ
भौतिकवादी युग में योग सिखाती हूँ मैं
भूखे पेट न सोए कोई
कुण्डलिनी जगाती हूँ मैं

ध्यान पंथ में चक्र मार कर
मन ज्यों ऊपर चढ़ते–चढ़ते
ब्रह्मरन्ध्र तक आ जाता है
भाव वस्तुओं के वैसे ही
ब्रह्मरन्ध्र तक ले आई हूँ
अब इस युग में
एक डालडा के पीपे को
पा लेने का अर्थ
ब्रह्म को पा लेना है
प्रभु–दर्शन की झलक देखना
एक टमाटर खा लेना है

भारत का आदर्श त्याग है
अनासक्ति है अपरिग्रह है
मुझको पा कर लोग
वस्तुएँ त्याग रहे है
अपनी खुद की कार छोड़ कर
बस के पीछे भाग रहे हैं
मैं लोगों को तड़क–भड़क से खींच
सादगी सिखलाती हूँ
टेरिलीन के शौकीनों को
लट्ठा ला कर पहनाती हूँ
माया जीवन का बन्धन है
रूपया–पैसा मैल हाथ का
मैं वेतनभोगी लोगों के
दो दिन में बन्धन हर देती
शीघ्र छुड़ाकर मैल हाथ का
शीशे–सा निर्मल कर देती
नीति ग्रन्थ लिखने वालों ने
कम खाना या गम खाना
अच्छा बतलाया
मैंने उनका कथन निभाया
जितनी चीजें महँगी होंगी
उतना ही जन कम खायेंगे
जिस दिन रोटी नहीं मिलेगी
उस दिन खुद ही कम खाएँगे

शुक्ल पक्ष के चाँद सरीखी बढ़ती हूँ मैं
खूब चाँदनी फैलाऊँगी
अभी दुइज तक ही आई हूँ
पूरणमासी तक जाऊँगी
करो कल्पना तब भारत जन
कितने सुन्दर दिखा करेंगे
गेहूँ, चावल, चना,बाजरा
जब पुड़िया में बिका करेंगे
बीमारों को दूध, दही,घी के
इंजेक्शन लगा करेंगे
कैसा मधुर जागरण होगा
लोग भूख से जगा करेंगे

❖❖❖

डा॰ राम विलास शर्मा

रामविलास शर्मा का जन्म 10 अक्टूबर, 1912 को उन्नाव जिला के ऊँच गाँव साजी में हुआ था। हिन्दी साहित्य में रामविलास शर्मा एक कवि समालोचक के रूप में जाने जाते हैं। अज्ञेय द्वारा संपादित तारसप्तक (1943) के एक कवि के रूप में आपकी रचनाएं बहुत चर्चित हुईं और सराही गई। इनका निधन 30 मई 2000 को हुआ।

दिवा–स्वप्न

वर्षा से धुल कर निखर उठा नीला–नीला
फिर हरे–हरे खेतों पर छाया आसमान
उजली कुँआर की धूप अकेली पड़ी हार में,
लौट इस बेला संग अपने घर किसान।
पागुर करती छाहीं में, कुछ गम्भीर अध–खुली आँखों से,
बैठी गायें करती विचार,
सूनेपन का मधु–गीत आम की डाली में,
गाती जातीं भिन्ना कर ममाखियाँ लगातार।
भरे रहे मकाई ज्वार बाजरे के दाने,
चुगती चिड़ियाँ पेड़ों पर बैठी झूल–झूल,
पीले कनेर के फूल सुनहले फूले पीले,
लाल–लाल झाड़ी कनेर की, लाल फूल।
विकसी फूटें, पकती कचेलियाँ बेलों में,
ढो ले आती ठंडी बयार सोंधी सुगन्ध,
अन्तस्तल में फिर पैठ खोलती मनोभवन के,
वर्ष–वर्ष से सुधि के भूले द्वार बन्द।
तब वर्षो के उस पार दीखता, खेल रहा वह,
खेल–खेल में मिटा चुका है जिसे काल,
बीते वर्षो का मैं, जिसको है ढँके हुए
गाढ़े वर्षो की छायाओं का तन्तु–जाल।
देखती उसे तब अपलक आँखें, रह जातीं।

❖❖❖

प्रभाकर माचवे

प्रभाकर माचवे का जन्म 26 दिसम्बर 1917 को मध्य प्रदेश के ग्वालियर जनपद में हुआ था। प्रभाकर माचवे हिन्दी–मराठी भाषाओं के ऐसे ख्यातिप्राप्त साहित्यकार हैं जिन्होंने उक्त दोनों भाषाओं में सौ से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। इन्हें इनके कृतित्व के लिए सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान पुरस्कार और सुब्रह्मण्यम भारतीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। इनका निधन 17 जून 1991 को हुआ।

गेहूँ की सोच

काँप रही खेतों में गेहूँ की बालियाँ
मेंड़ पर बैठा है भूमिजन चिलम पीता, खाँसता।
सोंचती हैं बालियाँ –
यहाँ से हमें तोड़–तोड़
बच्चे ले जायेंगे,
जलायेंगे होली में
(गायेंगे गालियाँ
बजायेंगे तालियाँ)
याकि हमें जोड़–जोड़
खेतीहर अनजान
बेचेंगे किसी लाभकर्मी निरे खुदगर्ज बनिये को
(बेचेंगे यह कपास, वह जूट; हाय हम में ही फूट !)
बहुत कुछ जायेगा लगान
कुछ जायेगी कर्ज–किश्त
बाकी रह जायेगी –
झोंपड़ियों की उन भूखी अँतड़ियों के लिए सूखी
एक बेर की रोटी !
क्या यह नीति खोटी नहीं ?
गेहूँ के मोती–से दाने जो पसीने से
उगाये, अरे बदे हों उसी के भाग
आँसू के दाने सिर्फ !
सींचे वही खून जो लगाये वह सीने से,
और आँख मीच खायें वे कि जिन्हें ज़ीने से
उतरने में कीमख़ाब गड़ती हो .....!
छिः ऐसे जीने से बेहतर नहीं है क्या
होली में जल जाना ?
होली में जल जाना क्या है बुरा ?
क्या हैं बुरी गालियाँ ?
सोचती हैं बालियाँ
जब तक नहीं आसान मिलती हैं तालियाँ
मानव के कोष–दोष–जन्य घोर असन्तोष
संचय की,
विनिमय के वैषम्य के मदहोश तालों की।

❖❖❖

अध्यात्म के दोहे

–पं0 देवनारायण तिवारी

गति देता है विश्व को, पर है स्थिर आप।
बाहर–भीतर व्याप्त है, वह अनन्त–निष्पाप।।

सब संसृति उसमें बसे, वह संसृति में व्याप्त।
जो जाने इस तत्व को, वही पुरुष है आप्त।।

ज्ञानी जन संसार को समझे उसका रूप।
शोक मोह से दूर रह, माने उसको भूप।।

जो जाने इस विश्व को, ईश्वर का आकार।
उन्हें न व्यापे शोक–भय,माया का व्यापार।।

याथातथ्य विधान से, कर्मो का फल देय।
हो कृतार्थ वह जीव, जो उसका आश्रय लेय।।

ज्ञान–कर्म का मेलकर, जो करता है कर्म।
तरे मृत्यु सरिता वही, भोगे मुक्ति स्वधर्म।।

करे उपेक्षा जीव की, पूजे मात्र शरीर।
अन्ध लोक को प्राप्त हो, भोगे भीषण पीर।।

उससे भी भीषण दुखी, रहते हैं वे लोग।
त्याग ब्रह्म को मात्र जो, भोगें तन हित भोग।।

स्थूल देह से भिन्न है, कारण–सूक्ष्म शरीर।
फल भी तीनों का अलग, कहते ज्ञानी–धीर।।

सृजन और संहार का, रहे सर्वथा ध्यान।
कर्म पुनीत करे सदा, पाये मोक्ष महान।।

इस काया से पृथक है, सूक्ष्म ब्रह्म अनिकाय।
वह अन्तर में रम रहा, उस हित करो उपाय।।

चकाचौंध में विश्व की, छिपा सत्य का मर्म।
चमकीला ढकना हटा, देख सत्य औ धर्म।।

❖❖❖

संपर्क : 19, विधान सरणी,
कोलकाता–700006

बंद हुआ है गौरैया का आना आँगन में

–सर्वेश चन्दौसवी

बंद हुआ है गौरैया का आना आँगन में
बेशक नित्य सवेरे डालूँ दाना आँगन में

नीम मिरे आँगन में पहले छाया करता था
जिस पर कौआ अपनी धुन में गाया करता था
अब तो शोर करे है डिस्को–गाना आँगन में

तुलसी के चौरे पर घी का दीपक जलता था
माँ की पूजा से हर संकट आया टलता था
बिखरा है रिश्तों का ताना–बाना आँगन में

सूरज की किरनों से आँगन नित्य सँवरता था
कोई मौसिम हो ख़ुशियों का रंग बिखरता था
पहले–सा अपनापन दूभर लाना आँगन में

कोई भी उत्सव हो घर का आँगन सजता था
बात किसी अवसर की हो पर सत्य उपजता था
दुनियादारी को मैंने भी जाना आँगन में

सावन आता तो आँगन में झूला पड़ता था
'मैं झूलूँगा' मुझसे मेरा भाई लड़ता था
कुछ पल को पीड़ा का बादल छाना आँगन में

झूमें नाचें गायें लेकिन अपने कमरे में
अपने स्वप्न सजायें लेकिन अपने कमरे में
मैं चाहूँ माहौल पुराना पाना आँगन में

❖❖❖

संपर्क : एच 82, सत्यमनगर
एन–5 सिडको
औरंगाबाद, महाराष्ट्र–431001
मोबाइल : 07387575556, 09654463456

अब सागर मंथन होगा...!

–पं॰ सुरेश नीरव

क्षमादान भी कर सकते थे यदि तुम पोखर होते
विष पी जाते चुपचाप तुम में नहीं लगाते गोते
पर ताकतवर से लड़ जाना अपनी आदत अपना मन है
लहरो जागो! देखो धाराओ! हँसो ज़ोर से पतवारो
अब मेरी क्षमताओ ं का संघर्षो द्वारा अभिनंदन होगा
सागर ने ललकारा है मुझको अब सागर मंथन होगा।

होकर सवार लहरों के रथ पर सागर भाग रहे हो
ऐसा अभिनय कर लेते हो जैसे जाग रहे हो
अरे! इतना नहीं अकड़ते सागर खाली सीपी के बल पर
और कर्ज़ रखता हूँ प्यारे आने वाले कल पर
लो! शंख बगावत करते हैं अब मर्यादा–भंजन होगा
सागर ने ललकारा है मुझको अब सागर मंथन होगा।

भंवर पखारेगी पग मेरे हर नौका शीश झुकाएगी
जिन लहरों को छू दूँगा मैं जल पर कविता हो जाएगी
भले डूबना पड़ जाए सीने पर हस्ताक्षर कर दूँगा
आने वाली सदियों तक हर लहर मुझे दुहराएगी
तब कवि की कविता का सचमुच पूजन वंदन होगा
सागर ने ललकारा है मुझको अब सागर मंथन होगा।

❖❖❖

संपर्क : आई–204, गोविन्दपुरम
गाजियाबाद, उ.प्र.
मोबाइल : 9810243966

गीतों की वेदना पर

–राजवीर सिंह'भारती'

इक दिन विछड़े गीत मिले तो, बोले बाँह पसार।
अपने गले लगा लो कविवर, हमको फ़िर इकबार।

तुमनें जबसे हमें भुलाया।
नहीं किसी ने कंठ लगाया।
साज–वाज सब हुये बेसुरे;
दुनिया ने दे दर्द रुलाया।

गली–गली में अपमानित कर, मुझ पर किये प्रहार।
अपने गले लगा लो कविवर, हमको फिर इकबार।

जब अयोग्य हाथों में आया।
हमको रद्दी भाव तुलाया।
पड़ा रहा कूड़े–कचरे में,
अब जाकर तुमसे मिल पाया।

मंजिल पर पहुँचे राही को, मत देना दुत्कार।
अपने गले लगा लो कविवर, हमको फिर इकबार।

फूहड़ संस्कृति पश्चिम की।
मेरी भाषा पर आ धमकी।
चकाचौंध में भूल गये सब,
परिभाषा अपने संयम की।

राग हुये वैरागी लय और, छंद हुये बीमार।
अपने गले लगा लो कविवर, हमको फिर इकबार।

ओ मेरे मनमीत! न लिखना ।
सब लिखना पर गीत न लिखना।
नफरत की दुनिया में कविवर,
अनचाही तुम प्रीत न लिखना।

घाटे का सौदा है जग में, गीतों का व्यापार।
अपने गले लगा लो कविवर, हमको फिर इकबार।

(2)

जीवन पथ पर चलते–चलते

जीवन पथ पर चलते–चलते, हार गया ये मन।
प्रश्नों को हल करते–करते, बीत गया जीवन।।

जिन पौधें को बड़े चाव से, आँगन की क्यारी में रोपा।
खिद्मत के बदले माली पर, उल्टा गया लांछन थोपा।

व्यंग्य बचन अब सुनते–सुनते, और बढ़ीं धड़कन । हार.....

अभिलाषाओं के सागर में, मैंने अनगिन गोते खाये।
फिर भी नहीं किनारा पाया, जैसे–तैसे प्राण बचाये।

स्वप्न सिंदूरी बुनते–बुनते, और बढ़ी उलझन । हार.....

अपनों को स्नेह लुटा कर, तिरस्कार बदले में पाये।
कौन अतीत याद करता है, अपने ही हो गये पराये।

अधिकारों और कर्तव्यों में, सदा रही अनबन । हार.....

सामर्थ्यों से ऊपर मैंने, अपनों के दुख–र्दद बटोरे।
सम्मानों के बदले मुझको, अपमानों के मिले कटोरे।

अब हाथों को मलते–मलते, शेष बची भटकन । हार.....

जिनको उँगली पकड़ चलाया, वही आज उँगली दिखलाते।
जिनको बारहखड़ी सिखाई, वो तेरह की धौंस जताते।

रोज–रोज के उपवासों से, क्षीण हुआ ये तन । हार.....
जीवन के पथ पर चलते–चलते, हार गया ये मन।
प्रश्नों को हल करते–करते, बीत गया जीवन।

❖❖❖

संपर्क : 14/28, कविकुटीर
जीनफील्ड, सबलगढ़(मुरैना)
मध्य प्रदेश

गीत

–कैलाश 'कुंतल'

मानवता का ह्रास देख कर रोता है मेरा ये मन
दुखित दिख रहा आज घरों में मुझकों पावन चौथापन।

माता–पिता दिखते दुखी घर–घर आज मुखिया के नाम पर कलंक बरपाया है।
पति–पत्नी दोऊ मिल अपमान करें खान–पान पे प्रतिबन्ध हू लगाया है।
बच्चों को सिखाते नहीं भाषा सम्मान की वों बड़े बूढ़ों का मान मिटट्री में मिलाया है
सेवा और चाकरी तो भाड़ में गयी है यार 'कुन्तल' बेकार वासी खाना हू खिलाया है।
भूल गये जो प्यार था पाया और पाई सम्पती धन। दुखित.....

छोटी–छोटी बातन पें नये–नये ताने देत घर से निकालने की धमकी दे डारते।
जाने अनजाने में भूल भी भई कछु जननी जनक को हैं घर से निकारते।
दर–दर ठोकरें खात दिन रात दोऊ मान औ सम्मान से न कोई भी निहारते।
हम भी तो होंगे कभी वृद्ध और असहाय 'कुन्तल' वे लोग मन नेंक न विचारते।
एक न एक दिन छिन जायेगा तेरा भी सुन्दर उपवन। दुखित.....

चली है बयार ऐसी कोऊ ना विरोध करै, करै तो लड़ाई में न देर लग पायेगी।
मेरे घर की है बात तुमको का लेना–देना आपकी सलाह नेककाम नही आयेगी।
लाख समझाओ आप समय गंवाओ आप नासमझों को बात समझ न आयेगी।
'कुन्तल' समाज में ये विकृति भई जो पैदा प्रभू ही करेगे कृपा तो ही मिट पायेगी।
ओ समाज के ठेकेदारो अब तो छोड़ों ओछापन। दुखित.....

नौ माह तक जिन्हे गर्भ में रखा था ठीक उनका व्यवहार यह जग से निराला है
पर यह सोच लो रहा जो व्यवहार यही तो सब लोग जाने निकला दिवाला है।
माता औ पिता को कष्ट देते जो रहोगे आप एक दिन तुमको भी मिले न निवाला है
वेद विहित यदि सेवा न करोगे आप 'कुन्तल' तुम्हारा भी न कोई रखवाला है।
यदि ना किया सुधार अभी तो बिगड़ेंगे तेरे सब पन।
दुखित दिख रहा आज घरों में मुझको पावन चौथापन।

❖❖❖

संपर्क : सबलगढ़, मुरैना
मध्य प्रदेश

यह शहर है

–लल्लन प्रसाद

(1)

यह शहर है
यहाँ का दस्तूर है–
गली का एक कुत्ता भी
भौंकता है तो
आस पास की गलियों के भी
सारे कुत्ते भौंकने लग जाते हैं
महाल की एक महिला भी
बदनाम होती है तो
पूरा महाल बदनाम हो जाता है,
घर–घर में काना फूंसी होने लगती है
किसी के बेटे को ईनाम मिलता है तो
पास पड़ोस की सब मां एं
अपने बच्चों को सीख देने लगती है,
किसी को जेल हो जाती है तो
उसके सगे भी उससे कतराने लगते हैं
किसी का घर नीलाम होता है तो
भारी भीड़ लग जाती है,
कोई मित्र बीमार पड़ जाता है तो
उसे देखने को समय नहीं रहता,
मां बाप बूढ़े हो जाते हैं तो
बच्चे उनसे छूटकारा पाना चाहते हैं
अपनी सुख सुविधा के लिये
उन्हे घर से भी निकाल देते हैं,
अलशेसियन इस शहर में
बड़े शौक से पाले जाते हैं,
दूध देने वाले जानवरों को
शहर से दूर रखा जाता है।

(2)

यह शहर है,

यहाँ बन्दर बिल्लियां, कुत्ते ही

कूड़े दानों से खाना नहीं ढूंढ़ते,

झुग्गी झोपड़ी से आये

पीठ पर बदबूदार बोरे लटकाये

बच्चे भी अपना हिस्सा ढूंढ़ते हैं,

दूसरों के छोड़े कपड़े पहनते हैं,

सड़क पर उड़ते पलीथीन के

खाली थैले बीनते हैं,

रेड लाइट पर भी

चलती गाड़ियों के बीच

सड़क पार कर लेते हैं,

बचपन में ही

मौत से खेलना सीख जाते हैं।

❖❖❖

संपर्क : सी, 140, सैक्टर 19
नोएडा–201301
मो. : 9810990008

अनुत्तरित

–पीयूष चन्द्र दत्त

हे मेरे मित्र! तुम मेरे जनक तो नहीं हो,
फिर क्यों दिखाते हो
अपना औदार्य मेरे लिए।
तुम्हारी रणनीति के कार्यान्वयन के लिए,
तुम्हारी सोच को सही ठहराने के लिए,
और तुम्हारे मान–सम्मान की रक्षा के लिए भी
सदैव ही मुझे कभी काली, कभी चंडी, कभी दुर्गा
और कभी शुभंकरी बनना पड़ा है।

हे मेरे शुभचिन्तक! तुम विधाता तो नहीं हो,
तुम्हारा स्नेह, तुम्हारी आत्मीयता की पीयूष वर्षा
मुझ तक पहुंचते–पहुंचते तेजाब की बारिश बन जाती है
और पंक्तियों के बीच में प्रवाहित अशोभनीय टिप्पणियां, फब्तियां
रक्तबीज़ की तरह बढ़ने लगती है,
राख कर जाती हैं मेरी ममता, मेरे वात्सल्य और मेरे अनुराग को,
और प्रश्नचिह्न लगा जाती हैं मेरी सहजता, मेरी न्यायप्रियता पर।

वास्तव में, तुम्हारे तथाकथित देवता और मठाधीश,
नहीं चाहते कि तुम्हारे वरद हस्त की तनिक–सी छाया मुझे मिले
और तुम भी पहले कभी उनको दिए अपने वरदान की मर्यादा से
बंधें होते हो, या अभिशप्त होते हो।

कोई बात नहीं,
उनको अपने देवत्व, पांडित्य और वर्चस्व के अंधकार में घिरा रहने दो,
और चलने दो मुझे अपनी राह पर,
मेरी ममता, मेरे अनुराग और अस्मिता को मेरे पास रहने दो,
व्यक्त होने दो सहजता से मेरी न्यायप्रियता को।
मैं सिर्फ एक पंक्ति भर नहीं हूं, 'फीनिक्स' हूं।

राख से निकल कर, पंख फड़फड़ा कर, उठ कर, उड़ान भरने दो,
मेरे उल्लास, मेरे हास्य मेरे रुदन,
मेरी संवेदनाओं को सहजता से व्यक्त होने दो
प्रगति के खुरदरे पथ पर अवरुद्ध गति से ही सही, स्वयं बढ़ने दो।

पंक्तियों के बीच बने चुटकियों, फब्तियों, चुटकुलों
ठहाकों और कहकहों के इस पुराने किले को ढहाने दो,
अपशब्दों के इन रक्तबीजों को निगलते हुए, संहार करते हुए
मुझे प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने दो।

❖❖❖

(श्री पीयूष चन्द्र दत्त संसद भवन में अपर निदेशक हैं)

बँटवारा कर दो ठाकुर

—महेश अनघ

(1)

बँटवारा कर दो ठाकुर।
तन मालिक का धन सरकारी
मेरे हिस्से परमेसुर।

शहर धुँए के नाम चढ़ाओ
सड़कें दे दो
झंडों को पर्वत कूटनीति को अर्पित
तीरथ दे दो
पंडों को ।
खीर खांड ख़ैराती खाते
हमको गौमाता के खुर।

सब छुट्टी के दिन साहब के
सब उपास
चपरासी के
उसमें पदक कुँअर जू के हैं
खून पसीने
घासी के
अजर अमर श्रीमान उठा लें
हमको छोड़े क्षण भंगुर।

पंच बुलाकर करो फ़ैसला
चौडे चौक
उजाले में
त्याग तपस्या इस पाले में
राजभोग
उस पाले में
दीदे फाड़—फाड़ सब देखें
हम देखेंगे टुकुर—टुकुर।

❖❖❖

(2)

हम भी भूखे

हम भी भूखे तुम भी भूखे
और बीच में वर्जित फल है
हाय! समय वर्जित साँकल है

जिस पर मन सुगबुग होता है
आता वही तीर की जद में
वसुधा भर कुटुम्ब कहता है
रहना है अपनी सरहद में
हम भी काले तुम भी काले
दोनों का उपनाम धवल है

अभिलाषा अभिसार उमंगे
सब झांसे हैं सप्तपदी के
हम अगिया बैताल उठाए
खोज रहे हैं घाट नदी के
पीना मना नहाना वर्जित
कलसे में पूजा का जल है

अतिमानव आचरण हमारे
पशु होने को ललचाते है
बोधिवृक्ष के नीचे आकर
कितने बौने रह जाते है
बाहर से शालीन शिखर हम
भीतर लावा— सी हलचल है

संपर्क : उमरी, जिला—गुना,
मध्यप्रदेश

अपने ही साए

—गुलाब सिंह

(1)

कितने बेगाने लगते हैं
अपने ही साए
सपने हमें यहाँ तक लाए

प्यारी रातें नींद सुहानी
चढ़ता गया सिरों तक पानी
कागज वाले गुलदस्तों से
हमने की कल की अगवानी
दो हाथों की सौर पुरानी
पाँव ढ़ँकें तो मुँह खुल जाए

सुख का महल अटारी कोठा
कंधे डोर हाथ में लोटा
रोने मुँह धोने की खातिर
आखिर और कौन धन होता
वैभव के इस राज भवन में
हम साभार गए पहुँचाए

घर के भीतर डर लगता है
बाहर अँधियारा जगता है
उमड़े उठे आँख भर आए
धुआँ आग का सही पता है
रोज रोज की गीली सुलगन
फूँक लगे शायद जल जाए

(2)

पेड़ और छाया

पेड़ मेरा था मगर
छाया तुम्हारी द्वार पर थी
क्या हुआ भाई मेरे कि–
बीच में दीवार कर दी

चाहिए थी धूप दो पल
दो पलों छाया
पेड़ सूरज वही अपने
बीच में से कौन आया

मिटाकर सम्वाद सारे
मौन को लम्बी उमर दी

तनी हरदम रही अपने
अहं की पूरी प्रत्यंचा
ठूंठ ही रिस्ते रहे
खिलने न पाया कोई गुंचा

जय पराजय कुछ न दीखी
दीखा बस केवल समर ही

तीन घर के गाँव में
जलते रहे हैं तीस चूल्हे
जल गयी बारात सारी
अश्व से उतरे न दुल्हे
खोदते रह गए नीवें
उठ न पाया एक घर भी

❖❖❖

मखमली स्वेटर

–डॉ॰ कीर्ति काले

उड़ चला है दिन लगाए धूप वाले पर
याद फिर बुनने लगी है मखमली स्वेटर

गुदगुदी करने लगीं जब से गुलाबी सर्दियाँ
नाचती अनमनी होकर तभी से उँगलियाँ
गुनगुने दो नर्म गोले ऊन के लेकर

एक उल्टा एक सीधा और उसके बाद
हर सलाई ने बुनी है एक मीठी याद
नींद के हाथों सुनहरा झुनझुना देकर

धीरे–धीरे घट रहे हैं रात के फन्दे
पोरूओं ने छू लिए दिनमान के कन्धे
आँख में आकाश के सारे सितारे भर

(2)

हिरनीला मन

बौराया हिरनीला मन,
फिरता है जंगल–जंगल

सूखे में खोज रहा हरियाली घास
कजरारे बादल से मांगता उजास
पगले को बालू में दिखता है जल

छलती है बार–बार कस्तूरी गन्ध
अपनी ही मस्ती में झूमे निर्बन्ध
सूरज को छूता है पंजो के बल

आँखों में उभराई मतवाली भंग
पोर–पोर मुरकी ले पुरवा के संग
रोके से रूकता न बैरी चंचल

❖❖❖

संपर्क : बी–702, न्यूज्योति अपार्टमेंट
प्लाट–27, सेक्टर–4, द्वारका, नई दिल्ली

महक उठें मन

–गीता पंडित

चलो ढूँढ़ वो लाएँ चंदन
जिससे महक उठे मन
कब थे ऐसे फटेहाल मन–
अंतर्मन थे उपवन
पल–पल की ये भागदौड़ ही
रही लुभाए बचपन
मन के बिन कब पुष्प खिलेंगे
बंजर होंगे तनमन–
चलो ले आएँ वो स्पंदन
जिससे महक उठें मन

प्रीत के बिरवे बोकर मन की
फसलें स्वयं उगानी
सूखे मन में नेहनीर भर–
कविता कोई जगानी
मौन अधर रख आएँ बंसी
हर मन कहे कहानी
चलो ले आएँ वो अपनापन
जिससे महक उठें मन

हम हैं बूँदें एक सिंधु की
पलक झपकते मिटतीं
हैं अनमोल खजाने मन क्यूँ
श्वास अटकते दिखतीं
खिले पंक में भी पंकज मन
यही सीख अपनानी
चलो ले आएँ नेह बंधन
जिससे महक उठें मन

❖❖❖

खुशी सुनहरे कल की

–शांति सुमन

इतनी छोटी बदरंग धरा
विश्वास नहीं होता।

सहमी–सहमी सी चिड़िया
दाना चुगती है
डेनों को भी फेलाने से
वह डरती है
अपनापन का तो कोई
अहसास नहीं होता।

किस्से आतंकों के
इधर–उधर फैले हैं
जिसको भी देखो
सबके दामन मैले हैं
वह निर्बंध भरोसा तो
अब पास नहीं होता।

चोंच नहीं खुलती नीड़ों में
जबसे मौन जड़े
मगर पसीना पहन सभी के
सपने हुए खड़े
झूठे वादों का जंगल
तो काश नहीं होता!

अच्छी लगने लगी अभी से
आशा नयी फसल की
खाली आँखों में सजती
खुशी सुनहरे कल की
फूलों की खूशबू को फिर
बनवास नहीं होता।

❖❖❖

परिपक्वता

–प्रीति सुराना

तुम आज भी ढूंढते हो मुझमें,
वो अठखेलियों और अपरिपक्वता से परिपूर्ण
मेरी हंसी, मेरी बातें,
जो बहकाते थे हमारे कदमों को
और
हम ठीक आमने सामने बैठै
जिंदगी के कितने ही पहर बिता कर भी,
थोड़े से पल और चुरा लेने को बहाने ढूंढा करते थे,
पर आज तुम्हे लगता है,
हमारे बीच
बातों का ये सिलसिला अब थम सा गया है,
वो हंसी वो अठखेलियां,
दब गई हैं– चेहरे की झुर्रियों,
बालों की सफेदी,
और उम्र की ढलान में,

पर मुझे महसूस होती है,
हमारे रिश्ते की वो परिपक्वता
जहां हम आमने–सामने नहीं
बल्कि हाथ थामे
हम कदकम होकर
मंजिल की ओर,
निःशब्द मूक होकर बढ़ते चले जा रहे हैं,
क्यूँकि अब हम संवाद करते हैं,
हाथों के पकड़ से,
जो मुश्किल वक्त में और ज्यादा मजबूत हो जाता है,

.....जारी

खुशी के पलों में यही स्पर्श कितना मादक हो जाता है,
होठों के फैलाव मे हंसी और व्यंग्य के बीच का फर्क,
आंखों की चमक और नमी,
अब हम सब कुछ महसूस करते हैं,
एक दूसरे को समझते है सिर्फ एहसासों से,
अब हम सुन सकते हैं
एक दूसरे के सीने की धड़कनों में छुपे सारे भाव,
आखिर हम पहुंच ही गए
प्रेम की उस चरम स्थिति में
जब
संवाद मूक
और
एहसास मुखर हो जाते हैं.....

❖❖❖

संपर्क : 15 नेहरु चौक,
मेन रोड़, वाड़ा सिउनी,
मध्य प्रदेश

फ़कीराना आये सदा कर चले
मियाँ खुश रहो हम दुआ कर चले
दिखाई दिये यूँ कि बेखुद किया
हमें आपसे भी जुदा कर चले
बहुत आरजू थी गली की तेरी,
सो याँ से लहू में नहा कर चले।

–मीर तक़ी 'मीर'

प्रतीक्षा

–रचना आभा

(1)

सजन तुम बिन कैसा सृजन?
देव बिन कैसा भजन?
पायल की झनकार हो क्यूँकर,
क्यूँ हो चूड़ियों की खन–खन?
किसलिए काजल लगाऊँ,
किसलिए बिंदिया सजाऊँ,
किसलिए श्रृंगार करूँ मैं,
किसे रिझाने का करूँ जतन?
हैं शब्द टूटे, क्या करूँ?
हैं गीत रूठे, क्या करूँ?
क्योंकर मनाऊँ उनको मैं,
दिखता नहीं कोई प्रयोजन ।
न भाती है सरगम कोई,
सुहाए न मौसम कोई,
न ही दिखती आस–किरण,
मन घूम आता दूर गगन।
उन अधूरे सपनों का
अहसास अब मन को छले,
पूर्ण करने के लिये,
किया था जिनका चयन
बोलो, क्या कहूँ इन्हें?
कितनी अवधि तक रूकें?
ये चूड़ी, बिंदिया, गीत, मौसम
तुमको बुलाते हैं सजन!
कब इन्हें दोगे दर्शन?
कब मुझे दोगे दर्शन?

❖❖❖

(2)

ऐसा कभी नहीं होगा!

अधिक हुआ, तो शब्दो से
समझौता कर लूँगी मैं,
किन्तु सत्य न कह पाऊँ,
ऐसा कभी नहीं होगा।

कहते हो, तो आँख मूँद कर
गांधारी बन जाऊँगी,
किन्तु स्वप्न भी न देखूँ,
ऐसा कभी नहीं होगा।

वह प्रेम ग्रन्थ पढ़ते–पढ़ते
कहाँ अधूरा छूटा था,
तुम तो भूले, मैं भी भूलूँ,
ऐसा कभी नहीं होगा।

मकरन्दी पुष्पों पर केवल
भ्रमरों का अधिकार रहे,
तितली उन पर न बैठे,
ऐसा कभी नही होगा।

चाहे जितनी कोशिश कर लो,
रक्त रंग दिखलायेगा।
वृश्चिक छोड़े डंक मारना,
ऐसा कभी नहीं होगा।

संपर्क : जेसी, 34बी, ऊपरी तल,
खिड़की विलेज एक्सटेंशन
मालवीय नगर, नई दिल्ली

यही प्यार है

–सुरभि सक्सेना

पुष्प है गुलाब का
प्रेम का, प्यार का
श्रद्धा का, विश्वास का
ये अमिट आधार है
क्या यही प्यार है ?

आप हैं परे–परे
मन में कुछ डरे–डरे
ख़्याल हैं सजे–सजे
मूक हैं खड़े–खड़े
कुछ सोच विचार है
क्या यही प्यार है ?

दो कदम तो साथ दीजिये
उम्र न सही पल दो पल
मुलाकात का वादा ही कर लीजिये
तेरे एक क्षण पर तो
मेरा इख़्तियार है
क्या यही प्यार है ?

दुनिया तो यही चाहेगी
घरौंदा न कहीं बन जाये
मासूम दो पंक्षियों का
शिकारियों की मार है
क्या यही प्यार है

साथ दें अगर जो आप
हम भी साथ आयेंगे
हाथ दें अगर जो आप
हम ज़िन्दगी बनायेंगे
यही तो मन की दरकार है
क्या यही प्यार है

❖❖❖

संपर्क : डी–101, क्रीसेन्ट अपार्टमेन्ट
सेक्टर–50, नोएडा
मो॰ : 8447572514

ऐ देश के रखवाले

– आँचल मलिक

ऐ देश के रखवाले,
तू मार्ग में आगे बढ़ता जा
सुनहरे स्वप्न पूर्ण करता जा।
तू उजियाले की ओर बढ़ता जा,
प्रगति की राह में,
सफलता की चाह में।

ऐ देश के रखवाले,
तू आया अभी उल्लास बनकर
अभी ही चला हमारे अश्रु बहाकर
तू है मुस्तैद अपने कर्म में,
तू है समर्पित अपने धर्म में।

ऐ देश के रखवाले,
अनूठा है तेरा रण–कौशल,
अपने पराक्रम से किया इस देश का नाम
तूने रौशन।
तू संघर्ष करता है सीमाओं पर
जी–तोड़ दिन–रात,
अब संपूर्ण जगत है तेरे साथ,
ईश्वर का है तेरे शीश पर हाथ,
तो फिर भय की क्या है बात ?

ऐ देश के रखवाले,
जिस मिट्टी को चूमकर
तूने किया अपना देश–प्रेम व्यक्त,
एक दिन शहीद होने के पश्चात
उसी धरा की माटी में
समा जायेगा तेरा रक्त।

ऐ देश के रखवाले,
स्मरणीय है तेरा बलिदान एंव कुर्बानी,
सदा अमर रहेगी तेरी यह कहानी।
तूने व्याप्त किया प्रेम और सद्भावना
जन–जन में,
एकता का भाव है तेरे कण–कण में।
तूने मातृभूमि को मुक्त किया सभी बेड़ियों से।
संसार का निस्तार किया अपने
जतन से।
आबाद रहे तेरा यह योगदान,
ऐ देश प्रेमी ,
तू अभी भी है देश की आन–बान और शान।

❖❖❖

संपर्क : 110, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभयखंड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद

उगते सूरज का स्वागत करो राष्ट्रवर

–कौशलेन्द्र सिंह 'राष्ट्रवर'

सहते सब हैं ये भौतिक जगत की तपन
कौन ढूंढेगा हल कोई दिखता नहीं।
प्यार के बोल देकर जो आँसू पिये
कोई धारा के विपरीत दिखता नहीं।।

बह रहे आज धारा में तृण की तरह
कौन दरिया के विपरीत साहस करे।
आज तन्हाइयों में है सूरज– छिपा
कौन मुर्दो में उठने का साहस भरे।।

तोड़ दे काल के काले हिमखण्ड को
कोई ज्वालामुखी ऐसा दिखता नहीं। प्यार के बोल.....

चल रहीं आंधियां साजिशों की यहाँ
जो सहारा बने वह बिटप झुक गये।
प्रेम की वह नदी सूख बंजर हुई
जो बढ़े साहसी वह कदम रुक गये।।

पूर्ण कैसे बने युग पुरुष साधना
राम सा कर्मयोगी है दिखता नहीं। प्यार के बोल.....

छायी मायूसी जब से मसीहों में है
खुल के साहस यहाँ अब दरिन्दों में है।
कोई अंदाज सकता गरीबों का गम
एक आशा किरण बस वरिन्दों में है।।

कोई बन कर मसीहा यहाँ आयेगा
ऐसा अंदाजे कुदरत भी दिखता नहीं। प्यार के बोल.....

त्याग की यह फसल अब न बर्बाद हो
राह कुर्बानियों की न वीरान हो।
देख कर कर्म की यह कठिन साधना
बल्कि भगवान भी अब तो हैरान हैं।।

उगते सूरज का स्वागत करो 'राष्ट्रवर'
फिर न कहना कि मांगे से मिलता नहीं। प्यार के बोल.....

❖❖❖

संपर्क : मोहल्ला राधानगर
बिलग्राम चुंगी रोड, हरदोई

जीवन की रफ़्तार

– राजेश रंजन कुमार

जीवन की तेज हो गई रफ़्तार सोचिए
बासी हुई खबर–ए–अखबार सोचिए।
मेहनत से दूर भागने लगे हैं हम सभी
हर कोई चाहता है चमत्कार सोचिए।
अब लाभ के पलड़े में तुलता है आदमी
जीवन भी हो गया है व्यापार सोचिए।
प्रतियोगिता के नाम पे ईर्ष्या सिखा रहे
पनपेगा कैसे कोंपलों में प्यार सोचिए।
अब घूमते हैं बाज भी बुलबुल के वेष में
कैसे करेगा कोई ऐतबार सोचिए।
सूरत से आँकते हों जो लोगों की शख्सियत
ऐसों से मेल– जोल को सौ बार सोचिए।
कब तक सहेंगे जालिमों के जुल्मो सितम आप
चुप रह गये थे तब तो इस बार सोचिए।
देते नहीं हैं वोट इलेक्शन में भले लोग
कैसे बनेगी ढंग की सरकार सोचिए।
ताउम्र लगाता रहा इजलास के चक्कर
आम आदमी है कितना लाचार सोचिए।
मिट्टी के पियाले भी बनते हैं मिलों में
बैठा है हाशिए पे कुंभकार सोचिए।
बाजार तो करता ही था जरुरतें पूरी
तय कर रहा जरुरतें बाजार सोचिए।
हिन्दी में बोलने में आने लगी शरम,
कितने हैं हम दिमाग से बीमार सोचिए।
अपराध व ग्लैमर की चैनल में होड़ है,
गुम हो गया कहीं पे समाचार सोचिए।
हैं बेचते ज़मीर जो पैसों के वास्ते,
क्यों हो रही है उनकी जयकार सोचिए।

❖❖❖

संपर्क : 1255, सेक्टर–3,
वसुंधरा, गाजियाबाद
मो॰ : 9910206843

दर्द ही जब दवा बन गई

–विनोद पाण्डेय

(1)

दर्द ही जब दवा बन गई
मुस्कराहट अदा बन गई

राह इतनी भी आसाँ न थी
जिद मगर हौसला बन गई

सीख माँ ने जो दी थी मुझे
उम्र भर की सदा बन गई

संग दुआ जो पिता की रही
बद्दुआ भी दुआ बन गई

पाप कहते थे जिसको कभी
छल–कपट अब कला बन गई

झूठ वालों की इस भीड़ में
बोलना सच बला बन गई

चाँद से चाँदनी क्या मिली
रात वो पूर्णिमा बन गई

चूमना है गगन एक दिन
ख्वाब अब प्रेरणा बन गई

(2)

इक लहर सी हृदय में उठी है प्रिये
क्या कहूँ किस कदर बेखुदी है प्रिये

नैन बेचैन है, हसरतें हैं जवाँ
हर दबी भावना अब जगी है प्रिये

प्रेम के गीत की गूँज है हर तरफ
प्रीत की अल्पना भी सजी है प्रिये

साज श्रृंगार फीके तेरे सामने
दिल चुराती तेरी सादगी है प्रिये

मेरे दिल का पता दिल तेरा हो गया
ये ठगी है कि ये दिल्लगी है प्रिये

उस हवा से है चंदन की आती महक
जो हवा तुमको छूकर चली है प्रिय

उस कहानी की तुम खास किरदार हो
संग तुम्हारे जो मैने बुनी है प्रिये

छन्द, मुक्तक, गज़ल, गीत सब हो तुम्हीं
तुम नही तो कहाँ, शायरी है प्रिये

संपर्क : 129, सेक्टर–12
प्रताप विहार, गाजियाबाद
मो॰ : 09999047547

❖❖❖

ग़म के भरोसे क्या कुछ छोड़ा, क्या अब तुमसे बयान करें
ग़म भी रास न आया दिल को और ही कुछ सामान करें
भली बुरी जैसी भी गुज़री, उनके सहारे गुजरी है
हज़रते–दिल जब हाथ बढ़ाएँ हर मुश्किल आसान करें

–मीराजी

तब सावन बरसे तो

–राकेश खत्री

कभी घटा उठकर अरमानों की बिन बरसे उतरे तो
जब लाश पड़ी हो अरमानों की तब सावन बरसे तो

जीवन के कितने प्यासे पल
राह तके हैं तर्पण की,
कितने श्रृंगाार मेरे भेंट हुये
सुन झूठी बातें दर्पण की

कभी जाम छलक कर सपनों का बिन पिये फूटे तो
जब वक्त हुआ हो फेरों का तब प्रिय रूठे तो

साहस खींच कर सांसों में
पकड़ करी थी अंधेरों पर,
सुरमयी सांझ आ बैठेगी
पाजेब धरी थी मुंडेरों पर

गर सूरज बनकर हामी अंधेरों का बिन उगे रह जाये तो
जब सांझ भरे सिंदूर सपनों का तब काजल बह जाये तो

हदें तोड़कर मुट्ठी की
आसमानों पर नजर धरी
भर पसीना दिये में
आशाओं की बात धरी

फंस छल घात वीर कोई धर्मयुद्ध का बिन जीते मर जाये तो
जब लगे झोंका निज उच्छवासों का तब दीया बुझ जाये तो

ठुकरा करके निज सुधि
भाव मर्म में रम बैठा,
माती, माणिक नीलम आये
हदय सागर के तल बैठा

छन्द जहर देकर गृहस्थ बाण का बिन भाव रह जाये तो
जब रत्न जांच को जौहरी आये तब आब बह जाये तो

❖❖❖

संपर्क : सोनीपत, हरियाणा

मर्यादा– एक मृगतृष्णा

– विजेन्द्र कुमार 'अभी'

कौन है, हम क्या हैं, क्या हम जानते हैं ।
क्या अपनी ज़मीनी हद पहचानते हैं।
क्या इच्छाओं पर अंकुश लगाना जानते हैं।
क्या अपनी मर्यादाओं में रहना जानते हैं।
और तो और, क्या अपनी मर्यादा को जानते हैं।
या फिर अपनी मर्यादा को लाँघते हैं।
नदी जो इठलाती, बलखाती जाती है,
कभी रास्ता बदलती,
तो कभी बाढ़ तबाही लाती है;
और अपनी मर्यादा को लाँघ जाती है।
वहीं विशालकाय समुद्र,
अपनी सीमा को जानता है,
अपनी मर्यादा में ही रहता है।
पृथ्वी चाँद और सितारे,
अपनी परिधि में परिक्रमा करते हैं।
अपनी मर्यादा में ही रहते है।
और कभी मर्यादा को नहीं लाँघते हैं।
वह सीमाएँ वह रेखाएँ,
जो मर्यादा दर्शाती थीं,
कुछ धूमिल सी हो गई हैं,
तो कुछ मिट सी गई हैं।
कुछ इस प्रकार गोल घूम गई हैं,
कि समझ पाना कठिन हो गया है।
सही क्या है, गलत क्या है,
आँक पाना कठिन हो गया है।
मार्ग दर्शन का अभाव हो गया है।
रास्ते सीधे न हों,
तो चलना आसान न हीं होता।
चलते–चलते भटक जाना,
अब समझ में आ गया है।
कुछ ऐसा लगने लगा है,
कि सीमाएँ या रेखाएँ अर्थहीन हो गई हैं।
जानते थे अपनी ज़मीन को,
अब तो ज़मीन की पहचान ही मिट गई हैं।
पता थीं कभी बंदिशें अपनी,
अब तो किनारों की पहचान ही मिट गई है।
खुले आकाश में बुलंद सोच थी हमारी,
अब तो छोटे से दायरे में सिमट गई हैं।
मर्यादाएँ तो बस भ्रम मात्र ही रह गई हैं।
मृगतृष्णा और केवल मृगतृष्णा ही रह गई है।

❖❖❖

संपर्क : 87 ए, कंचनजंगा अपार्टमेंट
सेक्टर–53, नोएडा
मो॰ : 07838389950

मैं नज़र से पी रहा था ये दिल ने बद्दुआ दी
तेरा हाथ जिन्दगी–भर कभी जाम तक न पहुँचे
–शकील बदायूँनी

सरदी का अहसास

– कामदेव शर्मा

सुबह की गुनगुनी सरदी का एहसास,
बदन में कंपकपी के साथ,
झीनी–झीनी ठंड़ी हवा के साथ,
मखमली–मखमली ओस के साथ,
जाड़े की होने लगी शुरुआत।।

गुनगुने पानी के साथ स्नान,
फिर धूप को किया प्रणाम,
हल्की सी चाय की चुस्कान,
हो गई आंगन में ठंड की बरसात।।

मधुर–मधुर पक्षियों का कलरव,
मध्यम–मध्यम लोगों का हलचल,
सघन–सघन कोहरे का तांडव,
ले आई शीत सुहानी दस्तक।।

बच्चों की कलिकारी पार्कों संग,
यारों की पिचकारी में गुलाबी रंग,
यादों में पुरानी मखमली कंबल,
लो हो गई सर्दी की नई पहचान।।

❖❖❖

संपर्क : 008, गौड़ रेजीडेन्सी
चन्दर नगर, गाजियाबाद
मो. : 098187505159

फिर आज अश्क से आँखों में क्यों हैं आए हुए,
गुज़र गया है ज़माना तुझे भुलाए हुए।
–फ़िराक गोरखपुरी

माधव तुम चाहते तो...

– सुशील भूशण

माधव तुम चाहते तो,
समर रुक सकता था,
टल सकती थी, प्रलय
तब द्वापर कुछ लम्बा हो जाता
मूल्यो का जीवन बढ़ जाता
तब कलंकित होने से
कुछ धर्मराज बच जाते
तब शायद कलयुग न आता।
स्वाहा किया एक पूरे युग को
मात्र पांच ग्राम की खातिर
वह जायज–नाजायज़ अधिकारो का
महाभारत
धर्म युद्ध कहाँ था, माधव!
जो जितना निर्लज्ज
हो सकता था हुआ,
स्वयं तुमने कितने षडयन्त्र रचे!
पर मनचाही परिणिति दे युद्ध को
क्या तुम खुश थे?

युद्ध भले ही जीत लिया हो
पर तुम हार गये थे
खुद से।
क्या कुरुक्षेत्र में
गिरती लाशो पर
तुम नहीं रोए थे
क्या तुम नही टूटे थे
एक साधारण इन्साँ की भाँति ?
और तेरा टूटना ही
अन्त था द्वापर का
माधव सच–सच बतलाना
अश्वत्थ वृक्ष के नीचे
मृत्यु के इन्तजार में
उन अधिकतम ईमानदार क्षणों में
महाभारत की सार्थकता पर
क्या संशय नही हुआ था
तुमको.....

❖❖❖

संपर्क : 338, सेक्टर 13
पॉकेट–ए, द्वारका, नई दिल्ली–01

आँगन और देहरी

–सुरेन्द्र शर्मा

(1)

आँगन और देहरी के झगड़े
अब तो आम हुए
सारे घर को हमें मनाते
सुबहो–शाम हुए

तेज हवा के झोंके पल में
घर को बाँट गये
दरवाजों को दीमक–घुन
गेहूँ को चाट गये
सूख गया आँगन का बिरवा,
हम बेनाम हुए

कोई कहता है कल से ही
पानी नही मिला
आपस के झगड़े में कब से
चूल्हा नहीं जला
छोटी–छोटी बातें लेकर
हम बदनाम हुए

पैसों के झगड़े में कोई
इतना रूठ गया
नाते रिश्ते दूर हुए और
साथी छूट गया
मंदिर की चौखट से ही
बनवासी राम हुए

(2)

सूत और तकली से अब वे....

सूत और तकली से अब वे, पल छिन–नहीं रहे
गोबर सनी दीवारें, आँगन वो दिन नही रहे

दूध खोजता भटका बछड़ा बाघिन के थन में
एक दुराशासी आशा को पाले हम मन में–
रहे भटकते भाव भूलकर सूने निर्जन में
हुए विलग खुद से जुड़ने के साधन नहीं रहे
सूत और.....

सुख रहे नहीं धरती पर, अपने जीवन में
चाँद पे बस्ती चले बसाने क्या ठानी मन में
लक्ष्य बदलते रहे सदा ही जनमन नहीं रहे
मन मंदिरके आँगन में, आराधना
सूत और .....

लक्ष्मण रेखा लाँघ गये तो सच को पहचाना
स्वर्ण हिरण छलना होता है तब हमने जाना
सूखे खेतों में फसलों के गायन नहीं रहे
हो सबके अनुकूल भाव मनभावन नहीं रहे
सूत और .....

❖❖❖

संपर्क : करतारपुरा, जयपुर, राजस्थान
email : surendrasharmapoet@gmail.com

युवा मन की अनुभूतियों को उकेरती कविताएं

–हरिमोहन

उदीयमान युवा कवियित्री **हेमलता** का पहला कविता–संग्रह **'कौन समझेगा'** मेरे हाथ में है। इसका शीर्षक 'कौन समझेगा' ही बहुत–कुछ अपने आप कह देता है। आज की जिन्दगी बेहद उलझी हुई है! सरल युवा मन इन उलझनों से तालमेल बिठाने के संघर्ष में बहुत कुछ सहता है। अल्हड़मन की भावुकता और समाज का जटिल ताना–बाना, दोनों आपस में तालमेल कैसे बिठाएं ? युवा मन इस समाज को अपने मन के भाव कैसे समझाये ? भावों से भरा एक युवा मन किन–किन उलझनों से जूझता है.... किसी से क्या कहे! आपाधापी और भाग–दौड़ से भरी इस जिन्दगी में कौन है जो युवा संवेदनाओं को समझे और उसकी राह आसान करे.... यह प्रश्न आज की युवा पीढ़ी के मन को घेरता है। समाज की तरह–तरह की वरजनाएं उसे घेरती है और एक असहज जीवन की ओर उसे धकेलती है। कवियित्री लिखती है.... ''जिन्दगी दिये की लौ की तरह हवाओं से लड़ती रहती है.... पर मेरा मुकद्दर है जिसको कोई ईश्वरी ताकत संभाले रहती है.... जब जिन्दगी की धूप आँखों में उतरी, लब खुल गये ! मंजर चुभने लगे और सपने बेबसी का ऐलान करने लगे ! बदलते परविश में तस्वीर बनती–बिगड़ती रही, लेकिन मै कैनवास में रंग नहीं भर पायी।'' हेमलता ने उसी कैनवास को अपनी कविताओं में उकेरा है, जिसमें वह रंग नहीं भर पायीं। उसका कहना है कि मैंने भावनाओं को रिश्तों के अहसासों से परिपूर्ण 'कौन समझेगा' में शब्दों के माध्यम से रचनाओं को समेटने की कोशिश की है ! 'कौन समझेगा' कविता–संग्रह की सारी कविताएँ युवा मन की कविताएँ है! युवा मन की अभिलाषाएं, आकाक्षाएं, सपने, सपनों को साकार रूप में देखने की लालसा ! प्रेम के विविध रूप–रंग है, मिलन की कल्पनाएँ तथा उनसे निर्मित होती अनेक छवियाँ... साथ ही रिश्तों की ऊष्मा को संजोती माँ, पति, भाई, दोस्त आदि पर कविताएँ है। समाज में अपनी अस्मिता, स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते समाज की वर्जनाओं, बिडंबनाओं, अन्यायपूर्ण स्थतियों से जूझती लड़की भी इन कविताओं में बोलती है। कविताओं में अनेक मनोस्थतियाँ हैं अकेलापन, निराशा, टूटन और अवसाद आदि, और फिर उनसे उबरने का संदेश देती, आशा का स्वर देती कविताएँ भी हैं। आस्था के स्वर वाली कविता देखिये जीवन तो जीना है रोकर क्यों जिएं, गम में भी मुस्कराकर जिएं।

समाज के सिमटने की चिंता हेमलता के मन को इस प्रकार कुरेदती है.... परिवार लहराता था फसलों में, अब छोटी–छोटी बगियों में बदल गया ! कवियित्री स्त्री–वर्ग के आंतरिक द्वंद्व और छटपटाहट का प्रतिनिधित्व करती हुई प्रतीत होती है। कहती है.... लब पर चिपके सवालों का क्या करें बंद दरवाजों को खोलने की कोशिश भी तो करूँ कैसे ? नारी–सुलभ संकोच को शब्दों में ढालने का हुनर भी इस युवा कवियित्री ने सीख लिया है.... एक स्पर्श जो निराशा और कुठांओ से दूर पाने के साथ लज्जा बनी रहे, वंचित हूँ जिससे मैं... जिन्दगी की जटिलताओं जूझते मन की संवेदनाओं को समाज समझे, इसके लिए कवियित्री चिंतित है और कह उठती है... पूजा से मृत्यु तक, लोक से परलोक तक, आत्मा से परमात्मा के मिलन को कौन समझेगा.... एक उभरती हुई कवियित्री ही आत्मा से परमात्मा के मिलन की बात प्रेम मिलन के संदर्भ में कह सकती है। हेमलता इतना कुछ समेटे हुऐ है अपनी कविताओं में जो उसके पहले प्रयास के रूप में पाठको के सामने आई है। निश्चय ही उसके भाव संसाार का भविष्य उज्ज्वल है। कौन समझेगा (कविता संग्रह) कवियित्री हेमलता, प्रकाशक अयन प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 152, मूल्य 250/- रुपये

❖❖❖

मुझे भर नैन रोने दो

–शिवकुमार बिलग्रामी

नहीं कहता की तुम मुझको
सुकूं की नींद सोने दो।
रहो बस दूर तुम मुझसे
मुझे भर नैन रोने दो।

बसूँ मैं भी न आँखों में
न तुम दिल में उतर पाओ।
व्यथा गर अश्रु बन निकले
उसे चुपचाप पी जाओ।
अगर कुछ–कुछ हुआ भी हो
तो अब कुछ भी न होने दो।
रहो बस दूर तुम मुझसे
मुझे भर नैन रोने दो।।

करोगे क्या मुझे पाकर,
रहोगे क्यों मेरे होकर ?
चढ़े जो फूल मस्तक पर
वही हों पैर की ठोकर।।
मुझे तन्हा ही रहने दो
मुझे पलकें भिगोने दो।
रहो बस दूर तुम मुझसे
मुझे भर नैन रोने दो।।

कभी कोई ले के पाता है
कभी कोई दे के पाता है।
जगत में तो हमेशा गुल
मगर खुशबू लुटाता है।।
जिसे जिसमे क़रार आये
उसे उसमे ही खोने दो।
रहो बस दूर तुम मुझसे
मुझे भर नैन रोने दो।।

नहीं कहता की तुम मुझको
सुकूं की नींद सोने दो।
रहो बस दूर तुम मुझसे
मुझे भर नैन रोने दो।

❖❖❖

सृजन-स्मरण

ओमप्रकाश आदित्य

(जन्म : 5 नवम्बर, 1936; निधन : 8 जून, 2009)

घोड़ों को मिलती नहीं घास देखो
गधे खा रहे हैं च्यवनप्राश देखो
जो खेतों में दीखे वो फसली गधा है
जो माइक पे चीखे वो असली गधा है।

—ओमप्रकाश आदित्य

सृजन-स्मरण

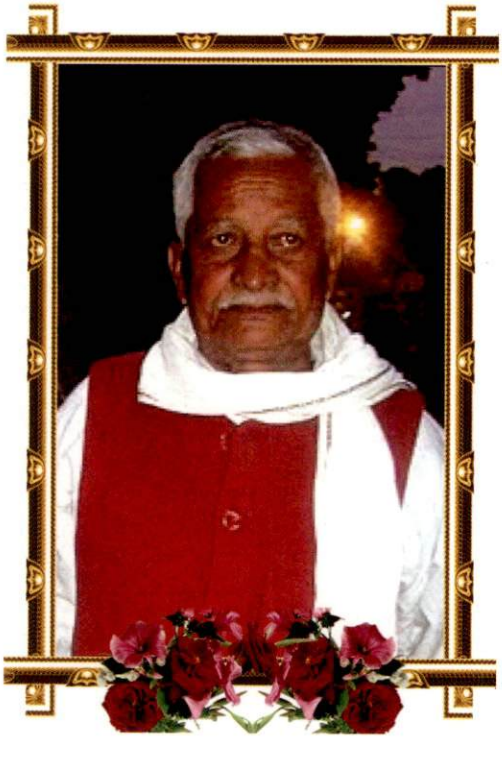

अदम गोंडवी

(जन्म : 22 अक्टूबर, 1947; निधन : 18 दिसम्बर, 2011)

आँख पर पट्टी रहे और अक़्ल पर ताला रहे
अपने शाहे–वक्त का यूँ मर्तबा आला रहे
एक जनसेवक को दुनिया में अदम क्या चाहिए
चार छः चमचे रहें, माइक रहे, माला रहे

–अदम गोंडवी